INDIAN STREAMS RESEARCH JOURNAL
ISSN NO : 2230-7850
IMPACT FACTOR : 5.1651 (UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 8 | SEPTEMBER - 2023

बघेलखण्ड के सांस्कृतिक विरासत के संवर्धन की संम्भावनाओं का ऐतिहासिक अध्ययन

देवेन्द्र कुमार सोनी[1] , डॉ. अमृता सिंह[2]
[1]शोधार्थी इतिहास, मध्यांचल प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.).
[2]प्राध्यापक इतिहास, मध्यांचल प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

सारांश –

सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण और पुनःस्थापन इसमें शामिल कलाकृतियों, वास्तुकला, पुरातत्व और संग्रहालय संग्रह की सुरक्षा और देखभाल पर केंद्रित है। संरक्षण गतिविधियों में निवारक संरक्षण, परीक्षा, प्रलेखन, अनुसंधान, उपचार और शिक्षा शामिल हैं। यह क्षेत्र संरक्षण विज्ञान, संग्रहालय अध्यक्ष और अभिलेखी के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है। सरकार हर राज्य, क्षेत्र और समाज के विविध इतिहास को सुरक्षित रखने का प्रयास करती है, इसलिए सभी नागरिकों के लिए एकजुट होना और भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने में सक्रिय रूप से भाग लेना महत्वपूर्ण है। इस संबंध में सरकार के प्रयासों का समर्थन करने के लिए एक सामूहिक प्रतिज्ञा की आवश्यकता है।

मुख्य शब्द – बघेलखण्ड, सांस्कृतिक विरासत, वास्तुकला, पुरातत्व और संग्रहालय ।

प्रस्तावना –

भारत में एक उद्योग के रूप में पर्यटन का विकास स्वतंत्रता के बाद ही शुरू हुआ और अब हमारी अर्थव्यवस्था में इनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण हो चुकी है। विदेशों से यहाँ आने वाले पर्यटकों की संख्या भी लगातार बढ़ रही है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बघेल की पहचान अपने प्राकृतिक सौंदर्य, सभ्यता के अवशेषों, लोक–संस्कृति के विविध रंगों, धार्मिक स्थलों वा वास्तुशिल्प के लिये है। प्रकृति प्रदत्त अनूकूल परिस्थितियों को देखते हुये देश के हृदय स्थल में स्थित रेवांचल को एक आदर्श पर्यटन क्षेत्र होना चाहिये था। यह क्षेत्र प्राकृतिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक विविधताओं तथा विशिष्टताओं से युक्त है, जो मानव मन को सहज ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।

बघेलखण्ड का प्राचीन इतिहास उतना ही महत्वपूर्ण एवं मौलिक है, जितना किसी भी सभ्य और सुसंस्कृत देश का हो सकता है। प्रागैतिहासिक काल के अनेक अवशेष इस भूमि पर बिखरे पड़े हुए हैं। इस क्षेत्र में पाये गये गये प्रारंभिक, मध्य तथा उत्तर पाषाणयुगीन औजारों से यह सिद्ध हो जाता है कि यह क्षेत्र प्रागैतिहासिक लोगों का निवास स्थान था। भू–वैज्ञानिक दृष्टि से सर्वाधिक प्राचीन ''गोड़वाना लैण्ड'' का यह भाग है। इस भू–भाग को आदि मानव की क्रीड़ा स्थली होने का गौरव प्राप्त है। धार्मिक दृष्टि से भी इस क्षेत्र की प्राचीनता प्रमाणित होता है। बाल्मीकी रामायण, महाभारत, स्कन्ध पुराण, भागवत पुराण तथा वायु पुराण में इस क्षेत्र का उल्लेख मिलता है। पुराणों में कारूष देश का वर्णन मिलता है। वस्तुतः वर्तमान बघेलखण्ड ही कारूष देश था। बाद में छठी सदी ई.पू. भारत में कई जनपद–राज्य स्थापित हुए, जो सोलह महाजन पद के

नाम से जाने जाते हैं। महाजनपद काल में चेदि जनपद की स्वतंत्र सत्ता स्थापित रही परन्तु कारूष देश कौशाम्बी के वत्स जनपद में सम्मिलित कर लिया गया।

नन्द साम्राज्य में पौराणिक प्रमाणों के अनुसार समस्त क्षत्रिय परिवारों के राज्य थे, जिनमें हैहय, कलिंग तथा अश्मत के राज्य भी सम्मिलित थे। इस क्षेत्र में कैमोर पहाड़ के उत्तर का भाग मौर्य वंशीय राजाओं के आधिपत्य में था। जस्टिन ने भी चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य को सम्पूर्ण भारत में स्वीकार किया है। भद्रवाहुचरित्र आदि जैन ग्रन्थ यह पुष्ट करते हैं कि सम्राट चन्द्रगुप्त के शासनकाल में विन्ध्य के इस रेवा पठार में नगरीय सम्यता का समुचित विकास हो गया था। यहाँ वाणिज्य एवं व्यापार महाजन पदों द्वारा होता था। यह क्षेत्र महाजनपदों को महापथों से जुड़ा हुआ था। उत्तर भारत को दक्षिण भाग से जोड़ने वाला दक्षिण पथ का महापथ विन्ध्य के रेवा पठार से होकर जाता था। पाणिनि में लिखा है कि दक्षिणपथ का जो मार्ग विन्ध्य के वनों से गुजरता था, उसका नाम ''कानरपथ'' था। मौर्यकाल के प्रमाण सम्राट अशोक द्वारा निर्मित भरहुत तथा देऊर कोठार के ऐतिहासिक बौद्ध स्तूप है। ईश्वी पूर्व दूसरी शताब्दी के मध्य में शुंग काल प्रारंभ होता है। इस शताब्दी के मध्य में पुष्यमित्र शुंग ने अंतिम मौर्य नरेश की हत्या कर सिंहासन पर अधिकार कर लिया था। उसका पुत्र अग्निमित्र, जो कि कालीदास के नाटक ''मालविकाग्निमित्रम'' का नायक था, अपने पिता के शासन काल में विदिशा का राजा था। इस राज्यवंश का इस प्रदेश पर प्रभुत्व था, जैसा कि भरहुत स्तूप में पाये गये कुछ शिलालेखों से प्रमाणित होता है। स्तूप के पूर्वी तोरण पर अंकित शिलालेख से यह प्रकट होता है कि नक्कासीदार पाषाण संरचना राजा धनभूमि द्वारा निर्मित करायी गई थी। चूँकि शुंग उस काल में शासन कर रहे थे, अतः यह संभव है कि तोरण, शुंग राजाओं की उदारता का परिणाम हो। कनिंघम् के अनुसार इस बात की बहुत संभावना है कि अन्य तीन तोरण भी उसी के द्वारा दान में दिये गये हों।[1]

विश्लेषण –

भारतीय साहित्य तथा धर्मग्रन्थों में भी इस क्षेत्र की प्राचीनता का वर्णन किया गया है। यह क्षेत्र ऐतिहासिक तथा पुरातत्वीय धरोहरों से समृद्ध है। यहाँ से निकलने वाली नदियाँ तथा पर्वत पौराणिक हैं। यहाँ की पवित्रता, प्राकृतिक सौंदर्य, अपार खनिज सम्पदा, वन्य जीवन, लोक कला एवं संस्कृति, प्राचीन मन्दिर तथा स्थापत्य कला देश की अमूल्य धरोहर है। इस क्षेत्र में एडवेन्चर टूरिज्म (साहिसक पर्यटन) को भी विकसित करने के पर्याप्त स्थल मौजूद हैं। गोविन्दगढ़, पन्ना, छतरपुर आदि की पहाड़ियों में ट्रेकिंग, गोविन्दगढ़ सरोवर तथा बाणसागर में नौकायन, सोन, केन तथा टमस नदियों में रिवर राफ्टिंग तथा खजुराहों के आसपास के मैदानों में गोल्फ की सुविधा विकसित की जा सकती है। यहाँ हार्स राइड़िग तथा पैरा ग्लायडिंग को भी बढ़ावा दिया जा सकता है।[2]

अमरकंटक :–

अमरकंटक भारतवर्ष के अग्रगण्य पवित्र स्थानों में से एक है। नर्मदा जी का उद्गम स्थान होने के कारण यह अनंत काल से ही सारे देश के तीर्थ यात्रियों के लिये आकर्षण का केन्द्र बना रहा। इसकी पवित्रता असंख्य प्रचलित दंत कथाओं तथा पौराणिक कथाओं का विषय रही है। मध्य भारत में नर्मदा जी को वही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है जो गंगा जी को उत्तर में है। कहते हैं पापों का विसर्जन करने के लिये जहाँ गंगा जी में गोता लगाना आवश्यक है, वहीं नर्मदा जी का दर्शन मात्र ही पर्याप्त है। अमरकंटक को समीपवर्ती तीर्थ स्थानों में सर्वश्रेष्ठ होने से पुराणों में 'तीर्थ रत्न' की उपाधि प्राप्त है।[3]

रीवा से अमरकंटक सड़क मार्ग से 310 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। रीवा रेलवे स्टेशन से रीवा–बिलासपुर ट्रेन द्वारा अमरकण्टक जाने के लिये पेण्ड्रा स्टेशन पर उतरा जा सकता है। पेण्ड्रा से लगभग 30 किलोमीटर की दूरी पर अमरकंटक है, जहाँ के लिये नियमित रूप से बस सेवा तथा टैक्सी सेवा उपलब्ध है। अमरकंटक नर्मदा का उद्गम स्थल है। इस स्थान को सोमपर्वत भी कहा जाता है। वायुपुराण में उल्लेखित है कि, एक बार ताण्डव करते हुए शिव के शरीर से पसीना बह निकला। वही आकर एक कुण्ड में इकट्ठा हो गया, जिससे एक बालिका प्रकट हुई, वह नर्मदा थीं। शंकर जी ने उन्हें लोक कल्याण के लिये नदी बनकर बहने को कहा। यह कुण्ड विन्ध्य पुत्र मेकल पर्वत श्रृंखला के शीर्ष पर स्थित है। नर्मदा मेकल पर्वत से निकलने के कारण 'मेकलसुता' कहलाती है। यही ग्यारह कोणीय कुण्ड नर्मदा का उद्गम स्थल माना जाता है। कुण्ड के

आस–पास 20 मन्दिर है। कुण्ड के पश्चिम में गोमुख से पानी बहकर जहाँ जमा होता है, उसे कोटि तीर्थ कहते थे। अमरकंटक का पूरा क्षेत्र सिद्ध स्थल है। स्कन्ध पुराण (5/28/112) में कहा गया है कि, मन से भी अमरकंटक क्षेत्र का स्मरण करने वाले व्यक्ति को चन्द्रायण व्रत का पुण्य प्राप्त होता है। मत्स्य पुराण (190/24) में लिखा है कि, यहाँ देवों का निवास है, इसीलिये इसे अमरकंटक कहा गया है।[4]

पुराणों के अनुसार अमरकंटक के आसपास का क्षेत्र किसी समय अयोध्या के महाराजाओं द्वारा शासित था। स्थानीय जनश्रुति के अनुसार कपिलदेव मुनि तथा मार्कण्डेय ऋषियों के आश्रम भी इसी के निकट थे। सम्पूर्ण अमरकंटक क्षेत्र विराटनगर (वर्तमान सोहागपुर, जिला शहडोल) के शासन में सम्मिलित कर लिया गया था। यहाँ की प्रचलित कथाओं से अपने अज्ञातवास के दिनों में पाण्डवों का भी इस स्थान में आना ज्ञात होता है। इसके आसपास बहुत से ऐसे पुराने स्मृति चित्र पाये जाते हैं जो इसके अतीत पर प्रकाश डालते हैं। कुछ समय तक इस क्षेत्र पर चेदि वंश का शासन था। दसवीं–ग्यारहवीं शताब्दी में यह क्षेत्र सोहागपुर तथा बांधवगढ़ सहित रतनपुर (बिलासपुर) के कलचुरि वंश के हाथ में आया। लगभग 1501 ई. के बाद यह क्षेत्र बांधवगढ़ सहित बघेलों के अधिकार में आ गया। रीवा, जो बाद में बघेल राजाओं की राजधानी बनी, को यह नाम नर्मदा नदी से प्राप्त हुआ, क्योंकि रेवा और नर्मदा समानार्थ शब्द हैं।[5]

सतपुड़ा पर्वतों को मिलाती है। यह तीन बड़ी नदियों का उद्‌गम स्थान है तथा एक बड़ा वाटरशेड है। इस पठार का क्षेत्रफल लगभग 300 वर्गमील है। यह 30 मील लम्बा और 9 मील चौड़ है तथा समुद्र तल से विभिन्न स्थानों में 2500 फीट से लेकर 3500 फीट तक ऊँचा है। अमरकंटक समुद्रतल से 3489 फीट ऊंचाई पर स्थित है। अमरकंटक में अधिकतर ब्राह्मण, साधु अथवा व्यापारी रहते हैं। इस स्थान पर प्रतिदिन यात्रियों का तांता सा बंधा रहता है, जिनकी संख्या मेलों के अवसरों पर विशेष रूप से शिवरात्रि, माघ पूर्णिमा, बैसाखी पूर्णिमा, संक्रान्ति तथा ग्रहण के अवसरों पर बहुत अधिक बढ़ जाती है। इस समय सभी यात्री यहाँ पर स्थित पवित्र नर्मदा कुण्ड में डुबकी लगाते हैं। अमरकंटक में शिवरात्रि सबसे महत्वपूर्ण पर्व माना जाता है।

बान्धवगढ़ –

बान्धवगढ़ नेशनल पार्क इस क्षेत्र को प्रकृति का अनुपम वरदान है, जो पयर्टकों का ध्यान मोहित करता है। बान्धवगढ़ खजुराहों से 270 किलोमीटर, जबलपुर से 200 किलोमीटर तथा रीवा से 135 किलोमीटर की दूरी पर है। रेल मार्ग से यहाँ कटनी या उमरिया रेलवे स्टेशन से पहुँचा जा सकता है। कटनी से बान्धवगढ़ की दूरी 95 किलोमीटर तथा उमरिया से 35 किलोमीटर है। कटनी और उमरिया दोनों ही रेलवे स्टेशन रीवा से रेल मार्ग से जुड़े हुये हैं। रीवा से बान्धवगढ़ के लिये सीधी बस सेवा तथा टैक्सी सेवा उपलब्ध है। बान्धवगढ़ राष्ट्रीय अभ्यारण्य का वर्तमान क्षेत्र लगभग 105.4 किलोमीटर है। इस अभ्यारण्य में बाघों की संख्या प्रति किलोमीटर की दर से सर्वाधिक है। यहाँ 250 से अधिक प्रजातियों की चिड़ियां तथा 72 प्रकार की तितलियाँ देखी जा सकती हैं। सम्पूर्ण अभ्यारण्य घने जंगलों से आच्छादित है। अभ्यारण्य में सुरक्षा व्यवस्था को मजबूत बनाये रखने के लिये अनेक चौकियों का निर्माण किया गया है। अभ्यारण्य में चार छोटी–छोटी नदियाँ तथा अमरकंटक से निकलने वाली प्रसिद्ध जुहिला नदी है। अभ्यारण्य में 24 तालाब हैं, जो प्राकृतिक वातावरण में निखार लाते हैं। यहाँ दो पहाड़ बान्धौ और बमनिया हैं, दोनों एक दूसरे के बहुत समीप हैं। बमनियाँ पर भी किसी प्राचीन किले की दीवालें हैं। बांधवगढ़ किले का यह भी एक अंश समझा जाता है। इसके अन्दर एक गांव बसा है, जिसके रहने वालों को 'खोरिया बकसरिया' कहते हैं। इस दुर्ग के नीचे 'गुलवकावली' का एक वन है। एक बड़ी पत्थर की शेषशायी भगवान की मूर्ति है, जिसमें एक झरने द्वारा लगातार जल गिरता रहता है। दुर्ग के भीतर एक प्राचीन किला, भगवान का मंदिर और कबीर दास जी की गुफा है। कबीर दास जी यहाँ बहुत दिनों तक रहे हैं। बान्धवगढ़ के दुर्ग में बघेलों द्वारा निर्मित कराया मोतीमहल व राजकोषालय के अवशेष आज भी विद्यमान हैं। प्रचलित धारणाओं के अनुसार इस दुर्ग में बघेल नरेश वीरभानु के समय सन्त कबीर दास यहाँ रहे हैं।[6]

पर्यटन की दृष्टि से यह एक छोटा किन्तु सघन राष्ट्रीय उद्यान है। बाँधवगढ़ में बाघों की बहुलता पूरे भारत में बाघों की बहुलता की तुलना में सबसे अधिक है। विशाल चट्टानी पहाड़ियों से भरे इस क्षेत्र में दलदली सतह और घने जंगलों से पटी घाटियाँ हैं। इनमें सबसे सुन्दर बाँधवगढ़ की पहाड़ियाँ हैं। बाँधवगढ़ विशाल खड़ी हुई चट्टानों से घिरा हुआ है। सबसे ऊँची चट्टान पर पुराना बाँधवगढ़ का किला है। इस उद्यान के चारों ओर विशेष रूप से किले के आसपास अनगिनत गुफाएँ हैं, जिनमें वेदियाँ हैं और प्राचीन संस्कृत शिलालेख उत्कीर्ण

हैं। शहडोल जिले में विन्ध्यपर्वत माला की दूरस्थ पहाड़ियों में स्थित बाँधवगढ़ 448 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला है। समुद्र सतह से औसतन 811 मीटर ऊपर बाँधवगढ़ गिरि है, जिसे अनगिनत पहाड़ियाँ घेरे हुये हैं। बीच–बीच में ढलानदार घाटियाँ हैं, जो छोटे–छोटे दलदली घास के मैदानों में समाप्त होती हैं। स्थानीय लोग इन्हें 'बोहेरा' कहते हैं, इस उद्यान का सबसे निचला बिन्दु स्थल ताला है, जो समुद्र सतह से औसतन 440 मीटर ऊपर है।

भरहुत :–

'भरहुत' मध्य प्रदेश के अन्तर्गत सतना जिले में जिला मुख्यालय से 14 किलोमीटर दूर सतना–अमरपाटन मार्ग पर स्थित है। यह स्थान प्राचीन काल से ही अपने भव्य स्तूप के कारण प्रसिद्ध रहा है। पहली शदी–ईसवीं में मिस्र के भूगोलवेत्ता ने भरहुत का उल्लेख बरदाओतिस के रूप में किया है। यहाँ के स्थानीय लोगों की मान्यता है कि भरहुत की स्थापना तात्कालिक भर (आदिवासी) शासक ने की थी। भरहुत को भैरोंपुर और वरदावती के नाम से भी पुकारा जाता था। वर्तमान में भरहुत–स्तूप नष्ट हो चुका है। कुछ अवशेष 'भारत कला भवन' वाराणसी, कलकत्ता संग्रहालय और कुछ रामवन (जिला–सतना) के संग्रहालय में संग्रहीत हैं।

भरहुत–स्तूप का निर्माण लगभग द्वितीय शदी ईसा–पूर्व में हुआ था। भरहुत–स्तूप के पूर्वी तोरण पर एक अभिलेख अंकित है, जिससे पता चलता है कि शुंगों के राज्य में राजा गार्गी–पुत्र विश्वदेव के पौत्र एंव गौप्ती पुत्र अगरजु के पुत्र धनभूति ने तोरण का निर्माण कराया था। वेदिका में धनभूति के पुत्र विद्वपाल का भी एक अभिलेख मिला है, जिससे स्पष्ट हैं कि भरहुत के तोरण और वेदिका का निर्माण शुंगकाल में हुआ था। इसकी खोज 1873 ई. में अलेक्जेण्डर कनिंघम ने की थी। कनिंघम के साथ उसका सहयोग जी.डी. बेगलर भी था। कनिंघम ने अपनी द्वितीय यात्रा के दौरान 1874 ई. में भरहुत–स्तूप की आन्तरिक वेदिका का जीर्णोधार भी करवाया था। बाद में बी.एम. बरूआ और बी.एस. व्यास ने भी भरहुत के अवशेषों का सर्वेक्षण किया।[7]

देउर–कोठार के आसपास शैलाश्रय भी प्राप्त हुए हैं जिन्हें 5000 वर्ष पुराना माना जाता है। इन शैलाश्रयों पर शैलचित्र भी बने हुए हैं, जो एक ही रंग के हैं। देउर–कोठार के स्तूप के समीप कोइलरा नाम की एक छोटी सी नदी है, जो 90 मीटर की ऊँचाई से गिरकर एक जल–प्रपात बनाती है।

देउर–कोठार के बौद्ध–स्तूपों के आधार पर सिद्ध है कि बघेलखण्ड में बौद्धों का व्यापक प्रभाव था। प्राचीन काल में इस क्षेत्र का अत्यधिक महत्व था। देउर–कोठार जहाँ एक ओर कौशाम्बी के प्राचीन मार्ग से जुड़ा है, तो दूसरी ओर यह उज्जैनी मार्ग से भी सम्बद्ध है। वास्तव में देउर–कोठार प्राचीन काल के एक ऐसे महत्वपूर्ण मार्ग पर स्थित था, जिसका केवल व्यापारिक महत्व ही नहीं था, बल्कि उसका सांस्कृतिक महत्व भी था। इसलिए निःसंदेह देउर–कोठार की भौगोलिक स्थिति महत्वपूर्ण थी, जिसके महत्व को स्वीकार कर मौर्य शासकों ने यहाँ पर बौद्ध–स्तूप का भव्य निर्माण करवाया। वर्तमान में भी इस स्थान का सांस्कृतिक एवं पर्यटन की दृष्टि से महत्व है, आज इसके रख–रखाव और विकसित करने की आवश्यकता है।[8]

देऊर–कोठार :–

देउर–कोठार अभी हाल ही में खोजा गया प्राचीन बौद्धकालीन स्थल है, जो रीवा–इलाहाबाद राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 27 पर स्थित कटरा कस्बे से उत्तर–पश्चिम 5 किलोमीटर दूरी पर स्थित है। रीवा से इस स्थान की दूरी 65 किलोमीटर है। प्राचीन भारत में 16 महाजनपद थे, जिनमें प्रमुख जनपद उज्जैन से श्रावस्ती तक जाने का जो मार्ग था वह विन्ध्य पर्वत श्रृंखला के मध्य से रीवा की त्योंथर तहसील के देउर, देउपा, देवरा एवं देवरी ग्राम से होता हुआ कौशाम्बी जाता था। देउपा एवं देउर ग्राम के बीच मड़फा नामक पहाड़ एक प्राचीन पाषाण मठ बना हुआ है। इस मठ के समीप ही प्राचीन बौद्ध कालीन अवशेष विद्यमान है।[9]

कालिंजर :–

कालिंजर का अस्पष्ट उल्लेख ऋग्वेद में वर्णन किये गये तपस्थलों में किया गया है। महाभारत के वनपर्व में इसे मेधाविक तीर्थ का लोकविश्रुत पर्वत बताया गया है। पुराणों में कालिंजर का पर्याप्त संदर्भ मिलता है। मत्स्यपुराण में कालिंजर को देश तथा वन बताते हुये वहाँ काली का निवास बतलाया गया है। कालिंजर में श्राद्धदान की महिमा का उल्लेख वायु पुराण में मिलता है। कालिंजर में नीलकंठ मन्दिर के स्थित होने का उल्लेख वामनपुराण में मिलता है। स्कन्दपुराण में कालिंजर को पुरूषोत्तम क्षेत्र कहा गया है। प्रतिहार भोजवर्मा के

बराह ताम्रपत्र से ज्ञात होता है कि कालिंजर मण्डल उसके साम्राज्य में स्थित था। निजामुद्दीन ने कालिंजर की अजेयता का उल्लेख किया है। यह अजेय दुर्ग रेवा–पठार के तलहार में स्थित है। विन्ध्य क्षेत्र में कालिंजर की भौगोलिक स्थिति अपना महत्व रखती है। यमुना की दक्षिणी घाटी एवं विन्ध्यन तलहार में यह दुर्ग चौकस प्रहरी की तरह खड़ा है। यह दुर्ग समुद्र तल से 370 मीटर ऊँची पहाड़ी पर स्थित है। यह पहाड़ी पास के पहाड़ से अलग है और दोनों के बीच में 360 मीटर चौड़ी एक गहरी खाई है। पहाड़ी दीवार की भांति मैदान में खड़ी है और ऊपर जाकर लगभग 45 या 50 मीटर तक बिल्कुल सीधी दीवार सी बनी हुई है और कुछ स्थलों पर तो दुर्गम है। दुर्ग की दीवार पहाड़ी के अतिरिक्त पत्थर की बड़ी–बड़ी चट्टानों से निर्मित है। यह दीवार लगभग 10. 5 मीटर मोटी है। इस प्रकार इस दुर्ग की संरचना तलहार की एक विस्तृत पहाड़ी को रक्षात्मक ढंग से संजोकर विशाल प्रस्तर खण्डों से की गई है। इसमें जल एवं कृषि के साथ ही आश्रय की पर्याप्त सुविधा है। यही कारण है कि कालिंजर (कालंजर) प्राचीनकाल से लोगों को आश्रय देता है। इस दुर्ग में प्राप्त अभिलेखों एवं कला स्थापत्यों आदि से इसका प्राचीन इतिहास उजागर होता है। हिन्दू मध्यकाल से इस दुर्ग की सुरक्षा व्यवस्था को और सुदृढ़ किया गया था। कभी इस दुर्ग पर कलचुरियों ने आधिपत्य स्थापित किया तो कभी चन्देलों ने। इस दुर्ग को लेने पर इस राजवंशों ने अपने को कालंजराधीश्वर घोषित किया। अबुल फजल ने अकबरनामा में लिखा है कि, अथक प्रयत्न करने पर भी महमूद गजनबी इस दुर्ग को चन्देलों से नहीं ले सका था। चन्देलों के पराभव पर यह दुर्ग 'भर' राजाओं के आधिपत्य में आ गया। बघेल सर्वप्रथम कालिंजर के 'भरों' के यहाँ नौकरी कर तदन्तर गहोरा में अपना राज्य बना लिया।[10]

सफेद शेरों की धरती रीवा :–

प्रकृति की अनुपम एवं विरली देन 'सफेद शेर' सर्वप्रथम 1914–15 में रीवा नरेश महाराज व्यंकट रमण सिंह द्वारा पकड़ा गया था। इस सफेद शेर को रीवा नगर के व्यंकट भवन परिसर में रखा गया था। उसके निधन के पश्चात उसे स्टफ कराकर ब्रिटिश सम्राट को भेंट किया गया था। यह अभी भी नुचुरल हिस्ट्री म्यूजियम लंदन में संरक्षित है। सन् 1920 में रीवा स्टेट के आई.जी. पुलिस मिस्टर एच.ई. स्काट ने रीवा राज्य के वनों में अलग–अलग समय पर 8 सफेद शेर देखे थे। महाराज व्यंकट रमण सिंह के पुत्र महाराज गुलाब सिंह भी एक दो बार सफेद शेर के शावक पकड़वाने में सफल हुये थे, किन्तु वे शावक जीवित न रह सके। सफेद शेर की प्रजाति के संवर्धन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान महाराज गुलाब सिंह के पुत्र महाराज मार्तण्ड सिंह का रहा है।[11]

संसार के चिड़ियाघरों में आज जितने भी सफेद शेर है, सभी प्रथम संरक्षित सफेद शेर 'मोहन' के वंशज हैं। सफेद शेर मोहन को महाराज मार्तण्ड सिंह ने सीधी जिले के गोपदबनास तहसील के बरगड़ी के जंगल में घेरा डालकर 27 मई 1951 को पकड़ा था। कहा जाता है कि विश्व प्रसिद्ध इस शेर का जन्म कैमोर पर्वत श्रेणी के जंगलों मे 27 अगस्त 1950 को हुआ था। इस तरह जिस समय महाराज मार्तण्ड सिंह ने उसे पकड़वाया, उस समय उसकी आयु 9 माह की थी। मोहन को गोविन्दगढ़ किले में रखा गया। किले में विशषज्ञों के परामर्श के अनुसार मोहन को एक सामान्य शेरनी 'राधा' के साथ रखा। दोनों के संसर्ग से दस शावकों ने जन्म लिया, किन्तु वह सभी सामान्य रंग के थे। किन्तु महाराज मार्तण्ड सिंह ने हार नहीं मानी और वैज्ञानिक विशेषज्ञों के परामर्श के अनुसार मोहन को उसी की सन्तति ''रामबाई'' नामक शेरनी के साथ रखा गया। 30 अक्टूबर 1956 को रामबाई ने एक नर व तीन मादा शावकों को जन्म दिया। चारों सफेद रंग के थे। इस तरह सफेद शेर की वंश परंपरा प्रारंभ हुई। दूसरी बार रामबाई ने दो सफेद नर शावक और सामान्य रंग की एक मादा शावक को जन्म दिया। इन दोनों सफेद शेर शावकों को 9 अगस्त 1962 को कलकत्ता के चिड़ियाघर में भेज दिया गया था। वर्ष 1962 में ही गोविन्दगढ़ में पल रहे दो सफेद शेर शावकों में से एक अमेरिका व एक इंग्लैड के ब्रिस्टल चिड़ियाघर में भेज दिया गया था। इस प्रकार महाराजा मार्तण्ड सिंह के प्रयासों से सफेद शेरों की अच्छी व सुनियोजित वंशवृद्धि हुई। विश्वभर में प्रसिद्धि पा चुके शेर 'मोहन' ने 18 दिसंबर 1967 को अंतिम सांस ली। किसी वन्य प्राणी के लिए यह पहला मौका था, कि जब उसका अंतिम संस्कार राजकीय सम्मान से किया गया। मोहन का सिर आज भी 'बाघेला म्यूजियम' रीवा में संरक्षित है। इसके 200 वंशज आज देश और विदेश के विभिन्न चिड़याघरों में मौजूद हैं।

गोविन्दगढ़

गोविन्दगढ़ रीवा से 20 किलोमीटर दूर रीवा–अमरकण्टक मार्ग पर स्थित है। यहाँ स्थित सरोवर की प्राकृतिक आभा को देखकर पर्यटकों का मन मुग्ध हो जाता है और ऐसा लगता है, कि यह रीवा आने वाले पर्यटकों का खुले दिल से स्वागत कर रहा है। रीवा नरेश महाराज रघुराज सिंह ने सन् 1855 में इस सरोवर का निर्माण कैमोर पर्वत की तराई में दो पर्वत मालाओं को जोड़कर प्रारम्भ कराया था, यह कार्य महाराज वेंकट रमण सिंह के शासनकाल में पूर्ण हुआ। यह सरोवर 8 किलोमीटर की लम्बाई में फैला है। सरोवर से लगा हुआ एक किला है। यह किला रीवा के नरेशों का निवास स्थान रहा है। इसके दक्षिण की ओर राघव महल है।[12]

खंधों

रीवा शहडोल मार्ग पर रीवा से लगभग 22 किलोमीटर की दूरी पर कैमोर चोटी की ढलाव पर खंधो स्थित है। गोविन्दगढ़ से लगे हुये कैमोर पर्वत पर खन्दों देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। मकर संक्रांति के पर्व पर यहाँ विशाल मेला लगता है। यही पर शैलचित्र भी पाये गये हैं। इन शैल चित्रों में हाथी, चीता; पक्षी, घुड़सवार आदि अंकित हैं। इन शैल चित्रों में लाल, पीला एवं सफेद रंगों का इस्तेमाल किया गया है। गोविन्दगढ़ में पर्यटन की अपार संभावनायें हैं। गोविन्दगढ़ के किले को हेरिटेज होटल के रूप में विकसित किया जाय। तालाब की सफाई करवाई जाकर नौकायन की सुविधा उपलब्ध करायी जाय। तालाब से लगे जंगली क्षेत्र को भोपाल जैसा अभ्यारण्य बनाया जाय और सफेद शेर को रखा जाय।

प्रकृति की गोद में बसा : पपरा

पपरा कैमोर पर्वत की ऊँची पहाड़ियों के मध्य रीवा से तीस किलोमीटर दूर दक्षिण दिशा में रीवा–गोविन्दगढ़–रामनगर मार्ग पर प्रकृति की गोद पर बसा अत्यंत रमणीक स्थान है। यह स्थान धार्मिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से भी काफी महत्वपूर्ण है। पपरा में रोड से एक फर्लांग की दूरी पर एक अत्यंत प्राचीन शिव मंदिर स्थित है। यह शिव मंदिर तीन मंजिला है, जिसमें बड़े आकार का शिवलिंग स्थापित है। इस तीन मंजिला मंदिर में दो मंजिल तक जाने का रास्ता है लेकिन तीसरे मंजिल में जाने का कोई रास्ता नहीं है।[13]

गोरगी :– रीवा नगर से लगभग 20 किलोमीटर की दूरी पर गुढ़ रोड से अन्दर गोरगी एक अत्यनत दर्शनीय, पुरातात्विक एंव सांस्कृतिक स्थल रहा है। यह नौवीं सदी में इस अंचल का रोम था। खजुराहों के समान गोरगी मन्दिरों का नगर था, जो अब केवल अभिलेखों और वहाँ से प्राप्त अवशेषों में जीवित है। कोकल्लदेव द्वितीय द्वारा लिखित गुर्गी अभिलेख (कार्पस इन्सिक्रप्शनस् इण्डिकेरस के खण्ड 4) में इस क्षेत्र के पुरातात्विक महत्व का वर्णन किया गया है। पद्मधर पार्क रीवा में स्थापित हरि–गौरी की प्रतिमा रीवा के किले का पूर्वी द्वार (पुतरिहा दरवाजा) तथा गुढ के नजदीक खामडीह ग्राम के पास लेटी हुई विशाल भैरव देव की प्रतिमा उस काल की गौरवशाली शिल्पकला के जीवन्त प्रमाण हैं।[14]

रेहुटा किला :–

गोरगी क्षेत्र मे रेहुटा एक पुरातात्विक दर्शनीय स्थल है। इलिहासकार इसे रेवापत्तला का प्रशासनिक नगर मानते हैं। प्राचीनकाल में यह नगर एक विशाल परकोटे से घिरा था, जिसके अवशेष आज भी इस क्षेत्र में उपलब्ध हैं। इस भव्य नगर में उस समय जल की आपूर्ति बिछिया नदी से होती रही होगी, जो उसके पास से होकर गुजरती है। यहाँ आज भी नगरीय संस्कृति, प्रशासकीय आवास एवं मन्दिर आदि के अवशेष बिखरे हुये हैं।[15]

इटहा :– वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'इण्डिया एज नोन टू पाणिनि' पुस्तक के पुष्ठ 242 में लिखा है कि दक्षिण पथ का जो मार्ग विंध्य के वनों से गुजरता था, उसे पाणिनि 'कान्तार पथ' की संज्ञा दी है। रेवा पठार के इस मार्ग पर देउर–कोठर, केउटी, इटहा, भरहुत, आदि प्रमुख स्थल पड़ते थे, जहाँ नगरीय सभ्यता और धार्मिक संस्कृतियों का विकास हुआ। डॉ. राधेशरण ने लिखा है कि रेवा पठार के उपरिहार में नगरीय सभ्यताओं का प्रदुर्भाव हुआ। इटहा भी मौर्यकालीन युग का एक महत्वपूर्ण नगर था। इटहा में मौर्यकालीन नगर के अवशेष और

नगरों में उपयोग में आने वाली अनेक वस्तुयें प्राप्त हुई हैं। राधाकान्त वर्मा ने यहाँ सर्वेक्षण करते हुए मौर्यकालीन ईंटों के अवशेषों को प्राप्त किया है। इटहा के बारे में उन्होंने लिखा है कि यह अर्द्ध चन्द्राकार या धनुषाकर नगर था। मौर्यकाल में यह एक राजपीठीय नगर था।[16]

देवतालाब (ऋंगी ऋषि की तपस्थली)

रीवा से 50 किलोमीटर दूर स्थित देवतालाब मऊगंज तहसील में आता है। यह क्षेत्र विशेष रूप से अपने धार्मिक महत्वों के लिए जाना जाता है। यहाँ प्रसिद्ध शिव मंदिर है जहाँ दूर–दूर से श्रद्धालुओं का आना जाना लगा रहता है। कहा जाता है ऋंगी ऋषि घमूते हुए इस क्षेत्र में पहुंचे और उन्होंने यहाँ पर यज्ञ करवाया। यज्ञ पूर्ण होने पर वेदी पर विश्राव करते समय उन्हें भगवान शिव ने दर्शन दिये और वर मांगने को कहा। ऋषि ने कहा कि इस स्थान पर एक शिव मंदिर बनाया जाये। इसके बाद एक रात्रि में भगवान विश्वकर्मा ने देवतालाब में शिव मंदिर बनाया। इसे एक ही रात में पूरा करने का प्रयास किया गया लेकिन बरामदे का काम करते समय सुबह हो गई और यह काम आज भी अधूरा है। इस तरह देवतालाब श्रृंगी ऋषि की तपोभूमि है। यह शिव मंदिर एक पत्थरीय शिला खण्ड पर स्थित है और लोगों के आस्था का केन्द्र है। इस मंदिर में ग्यारह शिवलिंगों के साथ मुख्य शिवलिंग स्थापित है। इस क्षेत्र में यह मान्यता है कि, चारोधाम की यात्रा करने वाले तीर्थयात्री जब तक इस शिव मंदिर में जल चढ़ा नहीं देते, तब तक उनकी चारोधाम की यात्रा अधूरी मानी जाती है।[17]

भैरवनाथ (गुढ़) :– बघेलखण्ड में असंख्य दुर्ग व शैलचित्र विद्यमान हैं, जो रख–रखाव के क्षेत्र में अपने आपको निर्बल महसूस करते हैं। रीवा–सीधी मार्ग पर 20 किलोमीटर की दूरी स्थित गुढ़ से 7 किलोमीटर दक्षिण की ओर गुढ़, हर्दी, पांती पहुंच मार्ग में कैमोर पहाड़ पर खाम्हडीह में स्थित है जहाँ पर पत्थरों के चट्टानों के बीच विशालकाय भैरवनाथ जी की मूर्ति लेटी हुई अवस्था में है। यहाँ पर कुछ वर्ष पूर्व जे.पी. सीमेंट फैक्ट्री के सहयोग से भव्य मंदिर का निर्माण कराया गया है, जिसके अन्दर मूर्ति पूर्व की भांति ही पड़ी हैं, जिसमें सीमेन्ट फैक्ट्री द्वारा सड़क का निर्माण भी कराया गया है, परन्तु उसकी स्थिति अत्यन्त जर्जर है। जहाँ पर श्री भैरवनाथ जी की मूर्ति जिसकी लंबाई लगभग 30 फिट है जो अपने–आप में अनुपम और अनोखी हैं। उक्त स्थल के सर्वेक्षण पर ऐसी प्रतीत होता है कि उक्त मूर्ति पुरातत्व विभाग या अन्य शोधकर्ताओं की निगाहों से वंचित रही है।

चित्रकूट –

वर्तमान में चित्रकूट मध्यप्रदेश के सतना जिला एवं मध्यप्रदेश के कर्वी जिला में स्थित है। चित्रकूट का कुछ भू–भाग मध्यप्रदेश में आता है तथा कुछ भू–भाग उत्तर प्रदेश में आता है। यह स्थान हिन्दुओं का पवित्र तीर्थ है। रामायण से यह मालूम होता है कि प्रयाग से चित्रकूट की दूरी 10 कोस थी। वनवास के समय भगवान राम, लक्ष्मण और सीता को वापस अयोध्या ले चलने के लिए भारत अपनी सेना सहित चित्रकूट आये थे। महाभारत में चित्रकूट को मन्दाकनी तीर्थ पर स्थित तक पर्वत बताया गया है। उक्त तीर्थ के महिमा के गुणों का बखान करते हुए महाभारतकार लिखते है कि चित्रकूट जनस्थान तथा मन्दाकिनी के जल में स्नान करने वाले व्यक्ति राजलक्ष्मी से सेवित होते है।

कलचुरि शासक कर्ण के बनारस ताम्रपत्र और राष्ट्रकूट राजा कृष्ण तृतीय के करहद ताम्रपत्र में चित्रकूट का वर्णन मिलता है। पुराणों और अध्यात्मरामायण में चित्रकूट पहाड़ी का विवरण मिलता है। महाकवि कालिदास चित्रकूट को मन्दाकिनी नदी के तट पर स्थित बताते हैं। वर्तमान में चित्रकूट में स्थित कामतानाथ मंदिर में विराजमान कामतानाथ जी के दर्शन हेतु प्रत्येक माह कि अमावस्या को श्रद्धालु दर्शन करके कामदगिरि की परिक्रमा करते हैं। भगवान रामचन्द्र के पावन चरणरज से पवित्र भारत प्रसिद्ध यह स्थान प्राचीन बघेलखण्ड की महती गरिमा का चिन्ह है। इसके महात्म्य के सम्बन्ध में रहीम जी का मत है कि – चित्रकूट मे रमि रहे, रहिमन अवध नरेश। जापर विपदा परित है सो आवत एहि देश।। रामनवमी और दीपावली को यहाँ पूर्व परम्परा अनुसार विशाल मेले का आयोजन होता है, जो प्राचीनता से श्रद्धा विश्वास का केन्द्र स्थली बना हुआ है। चित्रकूट एक प्रख्यात तपोभूमि है।

विराधकुण्ड – भगवान राम वन कि यात्रा करते समय विराधकुण्ड के पास विराध नामक राक्षस का वध किया था। यह स्थान चित्रकूट के पास स्थित बताया गया है। इस स्थान की पहचान इलाहाबाद इटारसी रेलमार्ग पर स्थित टिकरिया स्टेशन से 3 किलोमीटर दूर स्थित इसी नाम के स्थान से की जाती है। विराधकुण्ड अत्रि आश्रम से 5 किलोमीटर की दूरी पर स्थित बाताया गया है।

अत्रिआश्रय – यह स्थान चित्रकूट जिला के बाबूपुर ग्राम से करीब 7 किलोमीटर दूर है। चित्रकूट से भरत के लौट जाने पर राम लक्ष्मण और माँ सीता यहाँ अधिक समय तक ठहरना उचित न समझ कर दक्षिण दिशा की ओर चल दिए, चलते चलते उन्हें अत्रि आश्रम मिला। रामायण के आधार पर कालिदार ने अत्रि आश्रम का वर्णन किया है। रघुवंश में वर्णन किया गया है कि अत्रिमुनि की पत्नी सती अनुसुइया ने सीता के अंगों में सुगंधित अंगराग लगाया था। रावण वध के उपरान्त पुष्पक विमान से अयोध्या लौटते समय भी कवि ने अत्रिआश्रम का संकेत किया है। महाकवि के उपरोक्त वर्णन के आधार पर अत्रिआश्रम मन्दाकिनी नदी के किनारे स्थित बताया गया है। यहाँ से चित्रकूट की दूरी ज्यादा नहीं बतायी गयी है।[18]

शरभंग आश्रम – वनवास के समय भगवान राम अत्रि आश्रम में निवास करने के बाद शरभंग आश्रम पंहुचे थे। इलाहाबाद इटारसी रेलमार्ग के जैतवारा स्टेशन से 25 किलोमीटर दूर घनघोर जंगल में स्थित शरभंग नाम से प्रसिद्ध स्थान को शरभंग आश्रम कहते है। इस आश्रम के पास ही एक कुण्ड तथा श्रीराम का मंदिर है। कहा जाता है कि यही वह पवित्र स्थान है जिस स्थान से शरभंग ऋषि ने भगवान राम के सामने अपने शरीर को अग्नि में हवन कर दिया था। महाकवि कालिदास ने राम के अयोध्या प्रत्यागमन प्रसंग में शरभंग आक्षम का वर्णन किया है। भगवान राम विराध कुण्ड से शरभंग आश्रम गये थे। यह स्थान विराध के मृत्यु स्थल से डेढ योजन की दूरी पर बताया जाता है। सतना धारकुडी मार्ग के विरसिंहपुर से इसकी दूरी 15 किलोमीटर है। इस आश्रम में टिकरिया रेलवे स्टेशन द्वारा भी पहुंचा जा सकता है। शरभंग आश्रम टिकरिया स्टेशन से करीब 3 किलोमीटर और टिकरिया ग्राम से लगभग 2 किलोमीटर दूरी पर स्थित है।

सुतीक्षण आश्रम – यह स्थान इलाहाबाद इटारसी रेलमार्ग पर जैतवारा रेलवे स्टेशन से करीब 32 किलोमीटर, बिरसिंहपुर से 10 किलोमीटर और सरभंग आश्रम से 16 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। वर्तमान में सुतीक्षण आश्रम की जगह राम का एक मंदिर स्थित है। कहा जाता है कि अगस्त्य मुनि के भाई सुतीक्षण का आश्रम यहीं पर था।

वाल्मीकि आश्रम – कर्वी से करीब 12 मील चित्रकूट इलाहाबाद राजमार्ग पर आदि कवि महर्षि बाल्मीकि जी का पवित्र आश्रम मनोरम पहाड़ी के चोटी पर स्थित है। इस पहाड़ी के नीचे बाल्मीकि नदी बहती है। पहाड़ी के शिखर में स्थित मंदिर में महर्षि बाल्मीकि जी कि मूर्ति स्थापित है। बाल्मीकि आश्रम के दक्षिण पूर्व पार्श्व मार्ग के एक गुफा में अनेक प्रकार की प्राचीन मूर्तियाँ स्थापित हैं।

मुकुन्दपुर :–

यह स्थान सतना जिला में स्थित है, जो रीवा से मात्र 14 किलोमीटर दूरी पर स्थित है, यहाँ पर व्हाइट टाइगर सफारी नाम का चिड़ियाघर है। यह स्थान पर्यटकों के लिये आकर्षण का प्रमुख केन्द्र है, जो सतना जिला में बेला–गोविन्दगढ़ मार्ग पर है।

निष्कर्ष –

निष्कर्षतः किसी स्थान अथवा क्षेत्र के निवासियों की प्रवृत्तियाँ भौतिक एवं बौद्धिक विशिष्टताएं बहुत सीमा तक आंचलिक भौगोलिक परिवेश पर निर्भर करती है अर्थात किसी भी देश के सांस्कृतिक इतिहास के अध्ययन में उस क्षेत्र का भौगोलिक इतिहास पीठिका का कार्य करता है। बघेलखण्ड में प्राप्त कला कृतियों के अध्ययन से उक्त बातों की पुष्टि होती है। प्रचीन काल से ही बघेलखण्ड पर्वतों, नदियों, खनिज और वन सम्पदाओं से सम्पन्न रहा है। यहाँ से विभिन्न दिशाओं में बहने वाली नदियों का उद्गम हुआ है। अमरकंटक से मध्यप्रदेश की जीवन रेखा कही जाने वाली नर्मदा नदी, दूसरी सोन तथा तीसरी जोहिला नदी का उद्गम हुआ है। इनके अतिरिक्त टमस, महाना, घोघर आदि नदियाँ इस क्षेत्र में प्रवाहित होती है। इस क्षेत्र के अनेक प्राचीन ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और पर्यटन स्थल इन नदियों के तटों पर विकसित हुए है। इनके तटों पर प्रागैतिहासिक काल से लेकर पूर्व मध्यकाल तक के महत्वपूर्ण अवशेष और स्मारक प्राप्त हुए है। यह क्षेत्र पर्वतों तथा चट्टानों

का धनी कहा जाता है, जिससे शिलपकारों ने स्वच्छन्द मानसिकता से स्वतंत्र मूतियों एवं मंदिरों का निर्माण किया। पर्वत श्रृंखलाओं तथा पाषाण खंडों की उपलब्धता ने इस क्षेत्र में पाषाण काल को जन्म दिया, जिसकी व्यापकता का पता इस क्षेत्र में मिलने वाली बहुसंख्यक कलाकृतियों से चलता है। इस प्रकार से ऐतिहासिक सांस्कृतिक अवशेष हमारी अनमोल विरासत हैं। यह हमारे गौरवशाली इतिहास का दस्तावेज हैं। इनका संरक्षण और संवर्धन प्रत्येक भारतीय का उत्तरदायित्व है।

संदर्भ ग्रन्थ –

[1] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा राज्य का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2006–07, पृष्ठ 25
[2] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2012, पृष्ठ 116
[3] विक्रम सिंह बघेल – बघेलखण्ड का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2003, पृष्ठ 29
[4] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा राज्य का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2006–07, पृष्ठ 16
[5] विक्रम सिंह बघेल – बघेलखण्ड का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2003, पृष्ठ 30
[6] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा राज्य का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2006–07, पृष्ठ 17
[7] डॉ. शालिकराम मिश्रा एवं डॉ. आराधना मिश्रा – प्राचीन बघेलखण्ड का इतिहास, अनिल प्रिंटर्स, रीवा(म.प्र.), वर्ष 2021, पृष्ठ 39
[8] विक्रम सिंह बघेल – बघेलखण्ड का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद, वर्ष 2003, पृष्ठ 41, 42
[9] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2012, पृष्ठ 125, 126
[10] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा राज्य का इतिहास, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2006–07, पृष्ठ 22
[11] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2012, पृष्ठ 116
[12] डॉ. शालिकराम मिश्रा एवं डॉ. आराधना मिश्रा – प्राचीन बघेलखण्ड का इतिहास, अनिल प्रिंटर्स, रीवा(म.प्र.), वर्ष 2021, पृष्ठ 117
[13] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2012, पृष्ठ 119
[14] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2012, पृष्ठ 120, 121
[15] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2012, पृष्ठ 121
[16] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2012, पृष्ठ 122
[17] डॉ. अखिलेश शुक्ल – रीवा दर्शन, गायत्री पब्लिकेशन्स, रीवा, वर्ष 2012, पृष्ठ 124, 125
[18] डॉ. कृष्णेन्द्र कुमार मिश्र – प्राचीन बघेलखण्ड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, अ.प्र. सिंह विश्वविद्यालय, रीवा (म.प्र.), वर्ष 2007, पृष्ठ 201, 202